**International Journal of Academic Research and Development**
**ISSN: 2455-4197**
**Impact Factor: RJIF 5.22**
**www.academicsjournal.com**
**Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 938-941**

# कालिदास–अभिमत शिक्षा की वर्तमान प्रासंगिकता

**डॉ0 शिप्रा पारीक**
व्याख्याता, संस्कृत, एस.एस. जैन सुबोध स्नातकोत्तर (स्वायत्तशासी) महाविद्यालय, जयपुर, राजस्थान, भारत।

## प्रस्तावना

**वागर्थाविव संप्रक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये**
**जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।[1]**

वागर्थ की प्रतिपत्ति से चतुर्विध पुरुषार्थों को सम्पन्न करती हुई एवं पार्वती परमेश्वर की प्राप्ति तक व्याप्त रहने वाली कविकुलगुरू कालिदास अभिमत शिक्षा वर्तमान में भी प्रासंगिक है। ''शिक्ष्यते विद्योपादीयतेऽनया इति शिक्षा''[2] अर्थात् विद्या या ज्ञान का उपादान साधन शिक्षा कहलाता है। इसमें शिक्ष् धातु से ''गुरोरश्च हल'' इस पाणिनी सूत्र में ''अ'' प्रत्यय करने पर तदनन्तर स्त्रीत्व में 'टाप्' करने पर ''शिक्षा'' शब्द निष्पन्न होता है। ''सा विद्या या विमुक्तये'' शिक्षा में विद्या का ही भाव निहित है। वस्तुतः शिक्षा का उद्देश्य ही सर्वविध बन्धनों से मुक्ति है। विद्या प्राप्त करने से अविद्या स्वतः ही नष्ट हो जाती है। महाकवि कालिदास ने शिक्षा के लिये 'विद्या' शब्द का ही प्रयोग किया है ''समाप्तविद्येन मया महर्षिर्विज्ञापितोऽभूद्गुरूदक्षिणायैः''[3] यहां विद्या अर्थात् शिक्षा की समाप्ति पर गुरूदक्षिणा का उल्लेख है।
इसी प्रकार राजकुमार सुदर्शन द्वारा धर्म, अर्थ, काम, फल देने वाली त्रयी (तीनों वेद), वार्ता (कृषि) और दण्डनीति तीनों विद्याओं को शीघ्रता से सीखने का उल्लेख भी किया है –

**''तिस्रस्त्रिवर्गाधिगमस्य मूलं जग्राह विद्याः प्रकृतीश्च पित्र्याः''[4]**

अन्य स्थान पर चौदह विद्याओं का भी प्रतिपादन करते हैं जिसमें वरतन्तु ऋषि अपने शिष्य से विद्याओं की संख्या के अनुसार चौदह हजार करोड़ स्वर्ण मुद्रायें गुरू दक्षिणा में मांगते हैं।

**''वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया में कोटिचतस्रो दश चाहरेति।''[5]**

महाकवि कालिदास सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी हैं। अतः कवि की प्रतिभा अपने काव्यों में निहित वर्णनों में अनेक स्थलों पर शिक्षा व्यवस्था का भी संस्पर्श करती रही है, जिससे हमें कवि अभिप्रेत शिक्षा का ज्ञान होता है। कवि ने कहीं प्रत्यक्ष एवं कहीं गुणात्मक एवं अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा व्यवस्था पर अपने विचार प्रकट किये हैं। वस्तुतः युग बदलता है किन्तु मानव स्वभाव के मनोवैज्ञानिक पहलू सर्वथा शाश्वत ही हैं इसलिये मानव जीवन के उद्देश्य के साथ मेल खाती शिक्षा की चिन्ता पूर्व में भी थी और आज भी है और आगे भी रहेगी। शिक्षक, शिक्षार्थी, अधिगम, शैक्षिक वातावरण, शिक्षा की गुणात्मकता इत्यादि सभी शिक्षा के अनवरत गतिमान शाश्वत पक्ष है।
भारतीय संस्कृति शाश्वत जीवनमूल्यों पर आधारित है, गुरूकुल शिक्षा पद्धति में इन्हीं जीवनमूल्यों की अभिव्यक्ति होती है, भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित कालिदास के काव्य भी इन्हीं मूल्यों की व्यंजना करते हैं।
कालिदास शिक्षा व्यवस्था में धर्मशास्त्रीय पद्धति का समर्थन करते हुये प्रारम्भ में बालक के संस्कारों पर बल देते हैं –

**स जातकर्मण्यखिले तपस्विना तपोवनादेत्य पुरोधसाकृते।**
**दिलीपसनुर्माणिराकरोद्भवः प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ।।[6]**

अर्थात् रघु जातकर्मादि संस्कारों से संस्कृत होकर अधिक रूप से सुशोभित हुये। आज की शिक्षा व्यवस्था में भी यदि धर्मशास्त्रीय संस्कारों के अनुसार बालक को संस्कृत बनाते हुये शिक्षा दी जायेगी तो शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त अनुशासनहीनता व अन्य समस्याओं का समाधान संभव होगा। बालक को प्रारम्भिक वर्णमाला उच्चारण इत्यादि का ज्ञान घर में ही कर दिया जाना चाहिये, यह बात कालिदास को ज्ञात थी। इसलिये उल्लेख किया है –

**स वृत्त चूलश्चलकाकपक्षकैरामात्य पुत्रैः सवयोभिरन्वितः।**
**लिपेर्यथावदग्रहणेन वाङ्मय नदीमुखेन समुद्रमाविशत्।।[7]**

अर्थात् मुण्डन संस्कार हो जाने पर घने चंचल लटों वाले तथा समान आयु वाले मंत्री के पुत्रों के साथ पहले रघु ने वर्णमाला पढ़ना–लिखना सीखा तथा बाद में शास्त्र और काव्य प्रारम्भ किया, जैसे नदी के मुहाने से समुद्र में प्रवेश कर गये हो। इसमें सरल से कठिन की ओर अधिगम का सिद्धान्त भी प्रतिफलित होता दिखाई दे रहा है।
आज जो सम्पूर्ण देश में निरक्षरता की समस्या को दूर करने का अभियान चल रहा है, वह प्रारम्भ से ही परिवार में बालकों को अक्षरादि ज्ञान करवाने के बाद में वह कृषि आदि कार्यों में संलग्न रहे तो भी वह साक्षर रहेगा। इस प्रकार यह समस्या नहीं रहेगी।
घर में ही प्रारम्भिक रूप से अक्षरादि ज्ञान कर लेने के पश्चात् उपनयन संस्कार में गुरू के समीप विद्याध्ययन के लिये बालक को ले जाने का विधान कालिदास का भी अभिप्रेत है –

**''अथोपनीतं विधिवद्विपश्चितो विनिन्युरेनं गुरुवोगुरुप्रियम्।।[8]**

कालिदास विद्या देने वाले एवं उपनयन संस्कार करने वाले गुरू को आचार्य शब्द से सम्बोधित करते हैं मालविकाग्निमित्रम् नाटक में महारानी चित्रकला के आचार्य के समीप जाकर चित्र देखती है – ''श्रुणु चित्रशालां गता देवी यदा प्रत्यग्रवर्ण रागां चित्रलेखाम् आचार्यस्यालोकयन्ती तिष्ठिति भर्ता चोपस्थितः। इसी प्रकार पूरे आश्रम या विद्यास्थान के ऋषि ''कुलपति'' कहे जाते थे –

**''निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशालामध्यास्य प्रयत परिग्रहद्वितीय।''[9]**

यहां कुलपति वशिष्ठ के द्वारा निर्देश दिये जाने पर दिलीप के पर्णशाला में शयन करने की बात कही गयी है।
कालिदास आश्रम व्यवस्था के अनुसार जीवन यापन एवं शिक्षा ग्रहण करने में विश्वास रखते हैं। ठीक भी है क्योंकि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पुरूषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति इस पद्धति से ही संभव है –

**शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।**
**वार्द्धकेमुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।[10]**

रघुवंशी बालकपन में विद्याध्ययन करते थे, तरूणाई में संसार के भोगों का आनन्द लेते थे, बुढ़ापे में मुनियों के समान तपस्या करते थे एवं अन्त में योग द्वारा परमात्मा का ध्यान करते हुये अपना शरीर छोड़ते थे। इस प्रकार के जीवन प्रबंधन से मेल खाती शिक्षा सार्थक होती थी।
आज बालक में भोगवृत्ति स्कूल से ही देखी जाती है, उसका जीवन निरुद्देश्य चलता रहता है। आश्रम–व्यवस्था की भावना आज की शिक्षा को उद्देश्यपूर्ण बनाकर समाज का कल्याण कर पायेगी।
पाठ्यक्रम के निर्धारण में कालिदास वर्णाश्रम धर्म के अनुकूल है। अतः रघु ने आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति चार विद्याओं जो कि चारों समुद्रों के समान विस्तृत है, को अपनी तीव्र बुद्धि से शीघ्र ही सीख लिया –

**धियः समग्रैः स गुणैरुदारधीः क्रमाच्चतस्रश्चतुरर्णवोपमाः।**
**ततार विद्या पवनातिपातिभिर्दिशो हरिद्भिर्हरितामिवेश्वरः।।[11]**

वस्तुतः आज का पाठ्यक्रम केवल नौकरी प्राप्त कर धन कमाने से सम्बन्धित है। महाकवि की भावना के अनुरूप पाठ्यक्रम से व्यवसायिक व जीवनोपयोगी कला, शिल्पगत प्रवीणता व नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का विकास व अन्ततः निःश्रेयस की प्राप्ति संभव है।
गुरू का कार्य शिक्षा देना है लेकिन उसमें शिष्य की पात्रता भी विशेष महत्त्व रखती है। गुरू योग्य और अयोग्य दोनों प्रकार के शिष्यों को बिना भेदभाव शिक्षा प्रदान करता है किन्तु वह शिक्षा योग्य शिष्य में उत्तम गुण के रूप में फलित होती है। जैसे बादल का जल सीपी में पहुंचकर मोती बन जाता है।

**पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातु**
**जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य।।[12]**

पात्रता के अनुसार ही शिष्य को विद्यायें फलित होती है। पत्रतायें भी भिन्न–भिन्न हो सकती है जिस विद्या को सीखने में शिष्य की पात्रता है उसी विद्या का ज्ञान शिष्य को दिया जाना अपेक्षित है। इसमें शिष्य का मनोविज्ञान, उसकी बुद्धि, उसकी रूचि और उसके परिश्रम को यथासंभव परखने की अपेक्षा है।
वर्तमान में अधिक धन लेकर शिक्षा देने वाली संस्थाओं में काउन्सलिंग के द्वारा शिक्षा देने का कार्य होता है। किन्तु अधिकांश शिक्षण संस्थाओं में इसका अभाव है, अतः इसकी आवश्यकता है।
महाकवि जिस प्रकार शिष्य की पात्रता के विषय में जागरूक दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार आचार्य या शिक्षक की योग्यताओं के विषय में भी चिंतित हैं। उनका मानना है कि आचार्य उत्कृष्ट योग्यताओं से युक्त होने चाहिये, शिक्षक का केवल ज्ञान से भरा होना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि वह सीखाने की कला से युक्त भी होना चाहिये, ज्ञान और सीखाने की कला ये दोनों जिस शिक्षक में होते हैं, वही शिक्षकों में महत्वशाली बनता है –

**श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था**
**संक्रान्तिरूपस्य विशेषयुक्ता।**
**यस्योभयं साधु स शिक्षकाणाम्**
**धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव।।[13]**

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में शिक्षण कौशल की शिक्षा द्वारा शिक्षक तैयार किये जाते हैं किन्तु सरकारी नौकरी प्राप्त करने के पश्चात् शिक्षक उदासीन हो जाते हैं व कलात्मक रूप से अध्यापन नहीं करवा पाते। अतः आज शिक्षक की योग्यता में इन दोनों बातों का सम्यक् समावेश अत्यावश्यक है।
आचार्य गुरू जो दूसरों से निन्दा चुपचाप सुनता रहता है, शास्त्रार्थ के विवाद से दूर भागता है और जिसका ज्ञान केवल वेतन कमाने का साधन है, वह केवल बनिये की भांति है जो अपना ज्ञान बेचता है –

**लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।**
**यस्यागमः केवल जीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।।[14]**

आज शिक्षण एक व्यवसाय है, राज्य उसे एक कर्मचारी समझता है व शिक्षक अपने को वेतनभोगी; राज्य को उसे सम्माननीय दर्जा देना चाहिये व शिक्षक अपने कर्म को आजीविका से ऊपर समझे। तभी शिक्षण व्यवस्था उन्नत होगी।
विद्याध्ययन काल में वही शिष्य विद्याओं में प्रगति करता है जो विषयों में अनाकृष्ट रहे अर्थात् भौतिकता से दूर रहे। यदि वह विषय भोगी होगा तो विद्याओं में उसकी एकाग्रता और स्मरणशक्ति कम हो जायेगी तथा इस प्रकार उसकी बुद्धि विद्याओं को ग्रहण करने में सक्षम नहीं होगी।

**अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वन।।[15]**

आज की शिक्षा व्यवस्था में बालकों में इन्द्रिय–सुखों के प्रति आकर्षण देखा जाता है। वह सर्वथा त्याज्य है।
गुरू को खेल–खेल में ही शिष्य को रूचिकर रूप में विद्यायें सीखा देनी चाहिये। इससे शिष्य के मस्तिष्क पर दबाव उत्पन्न नहीं होगा और वह शीघ्र ही हृदयगम भी कर लेगा। राम और लक्ष्मण को जब गुरू विश्वामित्र आश्रम में ले जा रहे थे तो बला और अतिबला विद्या मार्ग में ही सीखा दी –

**तौ बलातिबलयोः प्रभावतो विद्ययोः पथि मुनिप्रदिष्टयो।[16]**

इसमें महाकवि को सरल रूप में शिक्षण अभिप्रेत है, जिसे आज पूर्णतः अपनाना चाहिये।
शिक्षण प्रक्रिया में अभ्यास का अत्यधिक महत्त्व है, इसमें कठिन से कठिन विषय में भी विद्यार्थी पारंगत हो सकता है –

**वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम्।**
**विद्यामभ्यसनेनैव प्रसादयितुमर्हसि।।[17]**

शिक्षा की सार्थकता उसके प्रयोग में है ज्ञान जब प्रयोग रूप में फलित होता है तो उससे संसार उपकृत होता है इसलिये योग्य गुरू से विद्या सीखना और पुनः उस विद्या को प्रयोग रूप में अनुष्ठान करना और तत्पश्चात् सफल प्रयोग सिद्ध होने पर पुरस्कृत होना, यही उस विद्या की सार्थकता है, इसलिये मालविकाग्निमित्रम् में गणदास कहता है–

**"देव ! श्रूयताम् मया सुतीर्थादभिनयविद्या सुशिक्षिता।**
**दत्त प्रयोगश्चास्मि देवन देव्या च परिग्रहीतः।।** [18]

आज विद्यार्थी अनेक उपाधियों के भार में दबा है, किन्तु उनका व्यवहार में प्रयोग दिखाई नहीं देता है। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा से प्राप्त ज्ञान क्रिया में परिणित होवे, तभी उसकी सार्थकता है।
शिक्षा प्राप्त करके व्यक्ति विनम्र अवश्य बनना चाहिये, क्योंकि विनम्रता सम्पूर्ण सुख का आधार है।
विद्याध्ययन से चारों दशरथ पुत्र अत्यधिक विनम्र हो गये, जैसे धृतादि से अग्नि और अधिक बढ़ जाता है, उसी प्रकार विद्याध्ययन से स्वाभाविक भी विनीत राम–लक्ष्मण–भरत–शत्रुघ्न की विनम्रता और अधिक बढ़ गयी –

**स्वाभाविकं विनीतत्वं तेषां विनयकर्मणा।**
**मुमूर्च्छ सहजं तेजो हविषेव हविर्भुजाम्।।**[19]

छात्रों की अनुशासनहीनता उच्छृंखलता व गुरुओं का अनादर करना आज आम बात है। **"विद्या ददाति विनयम्"** का आज अभाव है। यह शिक्षा के द्वारा प्राप्तव्य होना चाहिये।
विनम्रता होने साथ ही विद्यार्थियों में प्रतिस्पर्धा का भाव अवश्य होना चाहिये–

**प्रायः समानविद्या परस्पर यशः पुरोभागाः।।**[20]

आज की शिक्षा में बालक तनाव व दबाव में रहता है क्योंकि उसमें सकारात्मक प्रतिस्पर्धा का अभाव है, अतः इसकी आवश्यकता है।
विद्याध्ययनं में विद्यार्थी की मेधा का बहुत महत्त्व है आचार्य यदि सभी प्रकार से उत्तम रीति से विद्याध्ययन करवाता है किन्तु यदि मन्दमेधा वाले शिष्य यदि विद्या में प्रवीण नहीं हो पाते तो उसमें आचार्य दोष का भागी नहीं होता –

**यथा पुनर्मन्दमेधा शिष्या उपदेशं मलिनयन्ति तदाऽऽचार्यस्य न दोषः।**[21]

मन्दमेधा वाले शिष्यों के लिये आचार्य को अधिक परिश्रम करना पड़ता है, इसको कवि ने इस प्रकार से व्यक्त किया है। मालविका के विषय में पूछा जाता है वह

**"आर्य देवी पृच्छत्युपदेशग्रहणे नाति क्लिश्नाति वः शिष्या मालविकेति।"**[22]

इस पर आाचर्य कहते हैं कि वह परम निपुण और मेधावी है –

**"भद्रे विज्ञाप्यतां देवी परमनिपुणा मेधाविनी चेति।"**[23]

क्योंकि पात्र को प्रदान की गयी विद्या ही सफल होती है –

**"क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति।"**[24]

पात्र शिष्य के विद्याध्ययन पर जब गुरूजन संतुष्ट हो जाते थे तो शिष्य धन्य माना जाता था। जैसे मालविकाग्निमित्रम् में कहा गया है–

**"कृतार्थेदानीं व शिष्या यस्या गुरूजन एव तुष्यति।।"**[25]

शिक्षक को शिष्य की मेधा का ज्ञान अवश्य होना चाहिये, उसी के अनुसार वह अध्यापन कार्य करे, किन्तु आज एक शिक्षक के पास एक कक्षा में 70–80 विद्यार्थी होते हैं। अनुपात सही नहीं होने से वह बालकों की मेधा के अनुसार अध्यापन नहीं करवा पाते।
कालिदास विद्याध्ययन में पुरातन ज्ञान और अन्वेषणोपरान्त नवीन ज्ञान दोनों के ही पक्षधर हैं। दोनों ही पुराने और नये की सार्थकता को धारण करते हुये विद्यार्थी को अग्रसर होना चाहिये क्योंकि न तो पुराना होने से सब कुछ अच्छा होता है और न ही नया होने से सब बुरा होता है –

**पुराणमित्येव न साधुसर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवधम्।**
**सन्तः परीक्ष्यान्तरद्भजन्ते मूढ़ः पर प्रत्ययनेयबुद्धिः।।**[26]

कालिदास पुरातन और नवीन दोनों के समन्वय के पक्षधर हैं, आज विकास के लिये विनाश हो रहा है। अतः आज की शिक्षा द्वारा पुरातन को नवीन रूप में व्याख्यायित करते हुये अपनाने की आवश्यकता है।
शिष्य अपने द्वारा अध्ययन की गयी विद्याओं की सफलता प्रयोगोपरान्त विद्वानों के संतोष में देख सकता है – कालिदास प्रणीत अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक भी विद्वानों के संतोष से ही सार्थकता को प्राप्त करता है –

**आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।**
**बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः।।**[27]

शासक शिक्षा व्यवस्था के सुचारू संचालन के लिये विशेष चिंतित रहते थे। वे शिष्यों के अध्ययन काल को भी भलीभांति जानते थे तथा अध्ययनकाल में व्यतिपात को देखकर अपने निर्देश भी देते थे। आचार्य हरदत्त और गणदास जब एक साथ राजा के समक्ष दिखाई देते हैं तो राजा सहसा कह उठते हैं – "अरे शिष्यों के विद्याध्ययन काल में आप दोनों आचार्यों का यहां आगमन कैसे ?" –

**"किमिदं शिष्योपदेशकाले युगपदाचार्याभ्यामत्रोपस्थापनम्।।**[28]

आज के शासक शैक्षिक व्यवस्था में रूचि न लेकर अपने राजनैतिक स्तर की चिंता एवं भोग–विलास में रहते हैं, इसमें सुधार की आवश्यकता है।
कालिदास विद्या केन्द्रों को राजमहल से भी उच्च स्थान देने के पक्षधर हैं, तभी तो दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम में अपने आभूषण इत्यादि सामग्रियों को उतारकर विनम्र वेश में प्रवेश करना चाहता है–

**"विनीतवेशेणप्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम्।"**[29]

वर्तमान में शैक्षिक संस्थानों एवं वहां के कुलपति, प्राचार्य एवं अध्यापकों को उत्तम सम्मान देने पर ही शिक्षा केन्द्र उत्तम विद्याध्ययन केन्द्र के रूप में विकसित हो पायेंगे।
आश्रमों अर्थात् शिक्षा केन्द्रों की रक्षा का दायित्व शासक का है, यह भावना कालिदास के साहित्य में परिलक्षित होती है –

**कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनितानाम्।**
**अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु।।**[30]

विनय अर्थात् शिक्षा या विद्या का दायित्व निभाते हुये रक्षा और भरण–पोषण तीनों दायित्व राजा द्वारा ही पालनीय है –

**प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।**
**स पिता पितरस्तासां केवलं जन्म हेतवः।।**[31]

आज प्रजा को पिता की भांति पालन करने वाले शासकों की आवश्यकता है जिससे शिक्षा समाज में विनेयों की स्थापना करने में सफल हो पाये।

शिक्षा व्यवस्था में आचार्यों को वेतन प्रदान किया जाता था किन्तु वेतन के अनुसार कार्य करने का भी निरीक्षण किया जाता था –इसलिये मालविकाग्निमित्रम् में विदुषक के मुख से कालिदास कहलवाते हैं–क्यों व्यर्थ ही इनको (आचार्यों) को वेतन प्रदान करना–

**''किं मुधा वेतनदानेनैतेषाम्।''**[32]

आचार्य दोनों ही प्रकार के थे सवैतनिक और अवैतनिक किन्तु गरिमा और प्रतिष्ठा अवैतनिक आचार्यों को ही प्राप्त होती है। इसलिये कालिदास शिष्य के द्वारा भरपूर गुरूभक्ति और गुरू में शिष्य के प्रति अपार पुत्रवत स्नेह की अनुशंसा करते, दृष्टिगोचर होते हैं, तभी तो शिष्य कौत्स के बार–बार आग्रह करने पर भी आचार्य वरतन्तु गुरू दक्षिणा लेना नहीं चाहते –

**समाप्तविद्येन मया महर्षिविज्ञापितोऽभूद्गुरूदक्षिणायै।**
**स मे चिरायास्खलितोपचारां तां भक्तिमेवागणयत् पुरस्तात्।।**[33]

कालिदास शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थी को नैतिक, कुशल एवं मानवीय गुणों से सम्पन्न बनाने के लिये जागरूक है, किन्तु आज की शिक्षा में केवल भौतिक उन्नति की जिज्ञासा ही दृष्टिगत होती है। शिक्षा राजकीय सेवा की आकांक्षा से जुड़ गयी है। समाज का सम्पूर्ण परिदृश्य दिखावा, भौतिक प्रतिस्पर्धा, घृणा, वैमनस्यता, वैयक्तिकता इत्यादि नकारात्मक तत्त्वों से व्याप्त है। आज की शिक्षा डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रशासनिक अधिकार तो बना रही है लेकिन वे शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों से ओत–प्रोत नहीं हैं, देश आतंकवाद, अत्याचार, सामाजिक विषमता, स्त्री सम्मान की कमी जैसे दंशों से त्रस्त है।

इसलिये कोठारी आयोग के प्रतिवेदन में भी कहा गया है ''शिक्षा में जिस महत्वपूर्ण और जरूरी सुधार की आवश्यकता है, वह है इसके रूप बदलने की, उसे लोगों के जीवन, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से सम्बन्धित करने की और इस प्रकार उसे राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये आवश्यक सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन का एक शक्तिशाली साधन बनाने की। इस प्रयोजन के लिये शिक्षा का विकास इस तरह से होना चाहिये कि सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण हो सके, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में तेजी आये और सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य विकसित हो।''[34]

समाज में जो भी दृष्टिगत है उसका दायित्व शिक्षा व्यवस्था पर अवश्य है। कालिदास राजा के प्रजाओं में द्वारा विनय स्थापना के लिये चिंतित है वह सर्वावश्यक तत्त्व है। अगर प्रजायें मानवीय गुणों से सम्पन्न होकर सभ्य और सुसंस्कृत हो जायेंगी तो वास्तविक शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त हो सकेंगे। शिक्षा व्यवस्था की सम्पूर्णता के लिये शिक्षा संस्कार प्रदान करने वाली, जीवन को उन्नत करने वाली, पात्रता के अनुसार प्रदान की जाने वाली, शिक्षकों का उचित सम्मान देने वाली होनी चाहिए। शिक्षा में भौतिक लालसा से रहित शिक्षक, व्यावहारिक शिक्षक, निरन्तर अभ्यास व ज्ञान का व्यावहारिक प्रयोग करने वाले शिक्षक, शिष्यों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा, उत्तम विद्यार्थियों का सम्मान, विद्यार्थी पर गुरू का संतोष, सामाजिक संतुष्टि, शासक का उचित नियंत्रण लेकिन सर्वोपरि शिक्षा एवं शिक्षकों का स्थान, इत्यादि सभी बातें आवश्यक है। ये सभी कालिदास अभिप्रेत शैक्षिक तत्त्व है। इन तत्त्वों का आज की शिक्षा में समावेश होने पर शिक्षा और समाज दोनों उन्नत बनेंगे और भारत विश्वगुरू के अपने स्थान को सार्थक सिद्ध कर पायेगा।

**मूल शब्द**


1. रघुवंश 1/1
2. पाणिनीय सूत्र 2/3/103
3. रघुवंश 5/20
4. रघुवंश 18/50
5. रघुवंश 5/21
6. रघुवंश 3/18
7. रघुवंश 3/28
8. रघुवंश 3/29
9. रघुवंश 1/95
10. रघुवंश 1/8
11. रघुवंश 3/30
12. मालविकाग्निमित्रम्
13. मालविकाग्निमित्रम् 1/16
14. मालविकाग्निमित्रम् 1/17
15. रघुवंशम् 1/23
16. रघुवंशम् 11/9
17. रघुवंशम् 1/88
18. मालविकाग्निमित्रम्, पृ. 12
19. रघुवंशम्
20. मालविकाग्निमित्रम् 1/21
21. मालविकाग्निमित्रम् पृ. 14
22. मालविकाग्निमित्रम् पृ. 7
23. मालविकाग्निमित्रम् पृ. 7
24. रघुवंशम् 3/29
25. मालविकाग्निमित्रम् पृ. 12
26. मालविकाग्निमित्रम् पृ. 12
27. अभिज्ञानशाकुन्तलम् पृ. 12
28. मालविकाग्निमित्रम् पृ. 12
29. अभिज्ञानशाकुन्तलम् –
30. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/21
31. रघुवंशम् 1/24
32. मालविकाग्निमित्रम् – 1पृ./15
33. रघुवंशम् 5/20
34. शिक्षा आयोग, 1964–66